National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 852-853

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्यजीवितम् : एक समीक्षा

डॉ0 राजीव मिश्र
शोध सहायक, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

काव्य की उपादेयता, काव्य हेतु, काव्य लक्षण, काव्य के शरीरभूत अवयव, उसके आत्म–स्थानीय तत्व, गुण, दोष, अलङ्कार आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जिनका सूक्ष्म, युक्तियुक्त एवं विस्तृत विवरण अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है। इस चिन्तन परम्परा में अनेक ऐसे भी प्रतिभाशाली आचार्य हैं जिन्होंने काव्य के जीवनाधायक तत्त्व के समुन्मीलन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हेतु अपने–अपने अभिमत के माध्यम से रस, अलङ्कार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति एवं औचित्य जैसे सम्प्रदायों की स्थापना की। इस विद्ववत्–परम्परा में आचार्य भरत, भामह, वामन, कुन्तक, आनन्दवर्धन, मम्मट, क्षेमेन्द्र, विश्वनाथ कविराज तथा पण्डितराज जगन्नाथ का अति विशिष्ट स्थान है। इनमें से भी क्षेमेन्द्र ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने काव्य के सभी आवश्यक तत्त्वों के औचित्य एवं अनौचित्य को क्रमशः काव्यत्व एवं अकाव्यत्व का प्रयोजक प्रतिपादित कर काव्यशास्त्र के जगत में क्रान्ति ला दिया। उन्होंने अपने विद्ववतापूर्ण ग्रन्थ ''औचित्यविचारचर्चा'' में औचित्य को काव्य का प्राणाधायक तत्त्व प्रतिपादित कर एक नए सम्प्रदाय 'औचित्य–सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया।

जिस प्रकार लोक में सर्वत्र औचित्य का साम्राज्य विद्यमान है और जैसे औचित्य के अभाव में व्यावहारिक जीवन अव्यवस्थित एवं हास्यास्पद हो जाता है, ठीक उसी प्रकार काव्य (दृश्य एवं श्रव्य दोनों) में औचित्य की सर्वत्र आवश्यकता होती है। काव्य में रस, अलङ्कार, गुण, रीति आदि सभी तभी चमत्कारोत्पादक हो सकते हैं, जब इन अखिल तत्त्वों का विधान औचित्यपूर्ण ढंग से किया जाए। आचार्य क्षेमेन्द्र का मत है कि औचित्य तत्त्व काव्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग में अपरिहार्य होता है। क्योंकि औचित्य के अभाव में (अनौचित्य की स्थिति में) काव्य में रस–भङ्ग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो सहृदयों में काव्य के प्रति अरुचि पैदा कर देती है। इसी कारण आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के अभाव में गुण एवं अलङ्कार को व्यर्थ माना है–

काव्यस्यालमलङ्कारैः किं मिथ्या जनितैर्गुणैः।
यस्यजीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृष्यते।।[1]

क्षेमेन्द्र का स्पष्ट मानना है कि अलङ्कार काव्य के वाह्य शोभाधायक तत्त्व हैं और गुण भी सत्य, शीलादि लौकिक गुणों के समान गुण ही हैं, किन्तु काव्य का जो जीवितभूत (अविनश्वर आत्मतत्त्व) है वह औचित्य तत्त्व ही है–

अलङ्कारास्त्वलङ्कारा गुण एव गुणा सदा।
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्यजीवितम्।।[2]

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार लोक में उचित पारद रस आदि औषधियों के सेवन से शरीर में स्थिर नव–जीवन आता है, ठीक उसी प्रकार चारुत्व के हेतुभूत औचित्य की उपस्थिति के कारण ही काव्य में स्थिर जीवन आता है।[3] वस्तुतः उचित स्थान में विन्यास होने से ही अलङ्कारों में अलङ्कारत्व और गुणों में गुणत्व आता है–

उचित–स्थान–विन्यासदलङ्कृतिरलङ्कृतिः।
औचित्यादच्युतानित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः।।[4]

औचित्य तत्त्व के समुन्मीलन में लोकिक दृष्टान्तों का आश्रय ग्रहण करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र का कथन है कि जिस प्रकार हार, नूपुर, मेखला, केयूर आदि अलङ्कारों को यदि कोई ललना उचित अङ्गों– क्रमशः वक्षस्थल, चरणों, कटि तथा हाथों में न धारण कर अनुचित अङ्गों – क्रमशः नितम्ब, हाथों, गले तथा पैरों, आदि में धारण कर ले तो उसकी स्थिति शोभनीय न होकर हास्यास्पद हो जाएगी। उसी तरह काव्य में यदि अलङ्कारों के संयोजन में अनौचित्य हो जाए तो उनसे वैचित्र्य किंवा चमत्कार के स्थान पर अरुचि अथवा उदासीनता उत्पन्न हो जाएगी। अलङ्कारों के समान ही गुणों की भी स्थिति है। अर्थात् जिस प्रकार शरणागत पर वीरता एवं शत्रु पर करूणा दिखाने वाला व्यक्ति हँसी का पात्र बनता है, उसी प्रकार औचित्य के अभाव में गुण भी काव्यशोभा के जनक नहीं होते। अतः औचित्य तत्त्व ही गुणालङ्कार आदि सौन्दर्य के प्रतिमानों का प्रयोग धर्म सिद्ध होता है–

कण्ठे मेखलया नितम्ब–फलके तारेण हारेण वा।
पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येन प्रणते, रिपौ करूणया नायन्ति के हास्यताम्।
औचित्येन बिना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नो गुणाः।।[5]

औचित्य का स्वरूप निरूपित करते हुए क्षेमेन्द्र का कथन है कि जो जिसके अनुरूप होता है उसे आचार्यगण उचित कहते हैं और उचित के भाव को ही औचित्य कहा जाता है–

उचितं प्रहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।[6]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य के प्रत्येक अङ्ग में अपरिहार्य माना है। अन्यथा की अवस्था में (काव्य के प्रत्येक अङ्ग में औचित्य के अभाव से) काव्य में रसभङ्ग की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। तात्पर्य यह है कि काव्य के अखिल सौन्दर्य के प्रतिमानों की सार्थकता तभी है जब उनमें औचित्य तत्त्व विद्यमान हो।

वस्तुतः औचित्य तत्त्व जिसे क्षेमेन्द्र ने काव्य का जीवितभूत तत्त्व सिद्ध किया है, वह अलङ्कार शास्त्र के लिए कोई नवीन तत्त्व नहीं

है। क्षेमेन्द्र से पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कुछ आचार्यों ने अपने–अपने ग्रन्थों में औचित्य के विषय में पर्याप्त उल्लेख किया है। किन्तु उपर्युक्त औचित्य तत्त्व को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य क्षेमेन्द्र को ही जाता है। अलङ्कारशास्त्र के आदि आचार्य भरत ने औचित्य पद का प्रयोग न करते हुए भी दृश्य काव्य के अभिनय के पात्रों की वेश–भूषा एवं उनकी आयु, संवाद आदि के औचित्य का स्पष्ट निर्देश किया है।[7] अपने कथन को उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट करते हुए आचार्य भरत का कथन है कि जो वेश, देश के अनुसार नहीं है वह वैसे ही शोभादायक नहीं हो सकता जैसे कि वक्ष और मणिबन्ध पर मेखला धारण करने पर वह शोभा का जनक न होकर उपहास का कारण होती है–

अदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यैवोपजायते।।[8]

आचार्य भामह औचित्य को काव्य का महत्त्वपूर्ण गुण स्वीकार करते हुए लिखा है कि दुष्ट उक्ति भी सन्निवेश की विशेषता से उसी प्रकार शोभा जनक हो जाती है जिस प्रकार माला के मध्य में गूँथा हुआ नील पलाश शोभादायक होता है–

सन्निवेशविशेषस्तु दुरुक्तमपि शोभते।
नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव।।[9]

गुण और दोष के विधान में औचित्य एवं अनौचित्य की कारणता को दण्डी ने भी प्रतिपादित किया है।[10] अलङ्कारवादी आचार्य रूद्रट ने दोषों के मूल में अनौचित्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि देश, कुल, जाति, विद्या, धन, स्थान और पात्रों के आकार, वेश एवं वचनों में अनौचित्य का होना ही ग्राम्यत्व दोष है।[11]

सहृदय–हृदय सम्राट आनन्दवर्धन ने काव्य में औचित्य को अत्यधिक महत्त्व देते हुए अलङ्कार, गुण, रस आदि तत्त्वों के नियोजन में उसे अनिवार्य स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य में अलङ्कारों का सन्निवेश रस के औचित्य की दृष्टि से ही होना चाहिए। काव्य में रस ही प्रधान अलङ्कार्य है तथा रस आदि के तात्पर्य से विनियोजित अलङ्कार ही अलङ्कारत्त्व को सिद्ध करते हैं–

रसभावादि तात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।
अलङ्कृतीनां सर्वासामलङ्कारत्त्वसाधनम्।।[12]

अलङ्कारों के उचित सन्निवेश के महत्त्व को आनन्दवर्धन ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया तथा उनके नियमों के अनुसार विनियोजित किया। आनन्दवर्धन का स्पष्ट कथन है कि अनौचित्य के अतिरिक्त रसभङ्ग का अन्य कोई कारण नहीं है तथा प्रसिद्ध औचित्य का अनुसरण करना ही रस का परम रहस्य है–

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभङ्गस्यकारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषद् परा।।[13]

वस्तुतः आनन्दवर्धन की उपर्युक्त मान्यता ही क्षेमेन्द्रके औचित्यविचारचर्चा ग्रन्थ का आधार है। ऐसा प्रतीत होता है कि ध्वन्यालोककार के इसी दायभाग को ग्रहण कर के ही क्षेमेन्द्र ने औचित्य के व्यापक स्वरूप एवं उसके अङ्ग–प्रत्यङ्गों का वर्णन किया है तथा उसे काव्य की आत्मा के पद पर प्रतिष्ठित किया है। आनन्दवर्धन के अतिरिक्त अन्य उत्तरवर्ती आचार्यों– भोज, कुन्तक, महिमभट्ट आदि के ग्रन्थों में औचित्य के विषय में न्यूनाधिक विवेचन उपलब्ध होता है। इन सभी क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती आचार्यों द्वारा औचित्य के विवेचन से औचित्य तत्त्व के महत्त्व का स्वतः ही प्रतिपादन हो जाता है। क्षेमेन्द्र के औचित्य विवेचन से काव्यगत औचित्य की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, जो वस्तुतः आनन्दवर्धन के औचित्य विवेचन से पूर्णतः अनुप्राणित हैं–

1. औचित्य काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है।
2. यह काव्य में आस्वाद्यता लाता है।
3. यह रस का जीवितभूत है।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र एवं उनके पूर्ववर्ती आचार्य आननन्दवर्धन के औचित्य विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि काव्य में सर्वत्र औचित्य आवश्यक है। क्षेमेन्द्र ने अनेक लौकिक उदाहरणों के माध्यम से औचित्य को स्पष्ट करते हुए उसे काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करने का स्तुत्य यत्न किया है। आनन्दवर्धन ने भले ही ध्वनि को काव्य की आत्मा प्रतिपादित किया हो किन्तु उन्होंने ध्वनि के प्रत्येक स्तर पर औचित्य को अपेक्षित माना है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित औचित्य काव्य में रहने वाला एक ऐसा अपरिहार्य तत्त्व है जो काव्य के सौन्दर्य के अखिल प्रतिमानों का विनियोजन करता है। रस, अलङ्कार, रीति, वृत्ति, वक्रोक्ति गुण आदि सभी तत्त्वों की सार्थकता तभी है जब इन सभी में औचित्य विद्यमान हो। औचित्य के बिना उपर्युक्त सभी तत्त्व न केवल काव्य की शोभा के उत्पादन में असमर्थ होते हैं अपितु काव्य का अपकर्ष भी करते हैं। इसलिए अन्ततः यह कहना उचित ही है कि 'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्यजीवितम्'।

संदर्भ

1. औचित्यविचारचर्चा, 4
2. वही, 5
3. परस्परोपकारक–रूचिर–शब्दार्थरूपस्यकाव्यस्योपमोत्प्रेक्षादयो ये ... रसेन श्रृङ्गारादिना सिद्धस्य प्रसिद्धस्य काव्यस्य धातुवाद रस–सिद्धस्येव तज्जीवितं स्थिरमित्यर्थः। औचित्यविचारचर्चा, पृ0 115.
4. वही, पृ0 6
5. वही, पृ0 116
6. औचित्यविचारचर्चा, 7
7. वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषोऽनुरूपस्तु गतिप्रचारः। गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं पाठ्यानुरुपोऽभिनयश्च कायः।। ना0शा0, 14/68
8. ना0शा0, 23/69
9. भामह, काव्यालङ्कार
10. काव्यादर्श, 4/5, 10, 57
11. रूद्रट, काव्यालङ्कार, 11.9
12. ध्वन्यालोक, 3.6
13. ध्वन्यालोक, 3.14 की वृत्ति